संवैधानिक नैतिकता की संभावना

देश में सीवर की सफाई करते हुए मारे जाने वाले सफाई कर्मचारियों की खबर आए दिन पढ़ी जा सकती हैं। हैरानी की बात यह है कि इस प्रकार की मृत्यु की संख्या के दिनोंदिन बढ़ने के बाद भी यह अभी तक कानूनी विषय नहीं बन पाया है। न ही ऐसी मौतों की खबर पर कोई जन-आंदोलन या हड़ताल या काम रोको प्रस्ताव लाया जाता है।

सफाई के इस कार्य की शोषण की स्थिति, कानून और संविधान के प्रति सरकारी अवज्ञा का प्रदर्शन करती है। स्वतंत्रता के बाद से ही दिखने वाली सरकारी कानूनहीनता का यह अच्छा उदाहरण है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 17 हर मायने में छुआछूत को समाप्त करता है एवं किसी भी रूप में चलाई जा रही इस प्रथा को निषिद्ध करता है। अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि अस्पृश्यता से उत्पन्न होने वाली किसी भी प्रकार की विकलांगता का प्रवर्तन कानून के अनुसार दंडनीय अपराध होगा। यह एक मौलिक अधिकार है, एवं कानून व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है।

2009 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने नाज़ फाऊंडेशन बनाम एन सी टी ऑफ दिल्ली के मामले में बाबा आंबेडकर की संवैधानिक नैतिकता का चित्रण करते हुए धारा 377 के अंतर्गत आपसी सहमति से बने यौन संबंधों को अपराध की श्रेणी से हटाने की जोरदार वकालत की थी। इसी दौरान न्यायालय ने अनुच्छेद 15(2) के अंतर्गत सार्वजनिक स्थानों के प्रयोग से किसी को रोके जाने को अस्पृश्यता की श्रेणी में लाए जाने का भी हवाला दिया था। पिछले दिनों धारा 377 से संबंधित न्यायालय के फैसले में संवैधानिक नैतिकता की जीत हुई है।

आम्बेडकर की संवैधानिक नैतिकता की शक्ति का अनुमान जाति प्रतिरोध और अस्पृश्यता के उन्मूलन की शक्ति से लगाया जा सकता है। इसी संदर्भ में यौन-संबंधों पर हो रहे उत्पीड़न के लिए संवैधानिक विवेक को लागू किया गया।

नवतेज सिंह जौहर बनाम केन्द्र सरकार के मामले में न्यायालय के फैसले का संज्ञान लेते हुए सरकार को चाहिए कि वह अस्पृश्यता को भी प्रतिबंधित करे।

न्यायिक सहानुभूति

बहिष्कार करने वाले एक हिंसक समाज में संविधान का जीवित रहना एक बहुत ही भावनात्मक पहलू है। इसलिए यहाँ न्यायिक सहानुभूति का बहुत महत्व है। दमित-शोषित वर्ग और जाति के हमारे कुछ लोग सीवर में काम करते हुए, उन्हीं शहरों में दम तोड़ रहे हैं, जहाँ न्यायाधिकरण हैं। इस बारे में सरकार न तो अपना कोई दायित्व समझ रही है, और न ही इसके लिए कोई प्रयास कर रही है। अतः जिस प्रकार न्यायालय ने जौहर के मामले में एलजीबीटीक्यू समुदाय के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए कहा था कि, "इतिहास, इस समुदाय के लोगों और उनके परिवारों से न्याय में देर करने के लिए क्षमा प्रार्थी है"; उसी प्रकार से हमें ऐतिहासिक रूप से चले आ रहे इस घृणित अपराध के लिए क्षमा प्रार्थी होना चाहिए।

पूर्व मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने इस संदर्भ में संविधान के चार प्रमुख स्तंभों का उल्लेख किया था। व्यक्तिगत स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता; बिना किसी भेदभाव के समानता; हमारी गरिमामयी पहचान की मान्यता; एवं निजता का अधिकार ही वे चार आधार हैं। उन्होंने संवैधानिक मूल्यों में भ्रातत्व जैसे केन्द्रीय भाव का भी उल्लेख किया था। हमें सफाई कर्मचारियों के लिए इन्हीं अभिव्यक्तियों को अमल में लाना होगा।

सफाई कर्मचारियों के मामले में हम मौलिक अधिकारों का हनन होता हुआ देख रहे हैं। ऐसा न हो कि इसे देखते-सुनते हम यह भूल जाएं कि संविधान में अस्पृश्यता को एक अपराध माना गया है।

गैर-प्रतिगमन का सिद्धांत

अगर आज उच्चतम न्यायालय धारा 377 की असंवैधानिकता पर, संविधान के चारों स्तम्भों को आधार बनाकर कोई निर्णय ले सकता है, तो सभी मायनों में अस्पृश्यता का उन्मूलन भी संवैधानिक अधिकार है।

पूर्व न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा मानते हैं कि मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए बहुसंख्यक अनुमति की आवश्यकता नहीं है। ऐसी स्थिति में क्या हम संवैधानिक प्रक्रिया की विवेचना की उम्मीद करते हुए अधिकारों की प्रगतिशील अनुभूति कर सकते हैं? मौलिक अधिकारों के बारे में गैर प्रतिगमन का सिद्धाँत अब स्पष्ट कर दिया गया है। परन्तु सफाई कर्मचारियों के संदर्भ में अभी भी इसका उल्लंघन किया जा रहा है।

डॉ० आम्बेडकर के शब्दों में कहें तो, "हमें जल्द-से-जल्द इस विरोधाभास को हटा देना चाहिए। अन्यथा इस असमानता से पीड़ित समुदाय लोकतंत्र को उड़ा ले जाएगा।"

'द हिन्दू' में प्रकाशित कल्पना कन्नबिरन के लेख पर आधारित। 4 अक्टूबर, 2018